संस्कृत वाङ्मय में अध्यात्मप्रवाह : एक विहङ्गम दृष्टि

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कुलपतिचर, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

त्रय्यध्यात्मतरोर्भूमिर्मूलञ्चोपनिषच्चयः।
आर्षकाव्यमुभौ स्कन्धौ शाखाजालं पुराभवम्।।
श्रव्यं दृश्यञ्च साहित्यं फलपुष्पकदम्बकम्।
अस्याध्यात्मतरोश्छाया मुक्तिसौख्यं समुच्यते।।

'त्रयी (वेद) अध्यात्मरूपी वृक्ष की भूमि है, उपनिषदों का समूह ही उसकी जड़ है, आर्षकाव्य (रामायण एवं महाभारत) अध्यात्मतरु के दो स्कन्ध हैं तथा पुराण उसके शाखाजाल। समूचा दृश्य-श्रव्य साहित्य ही उसका फल- फूल है तथा मुक्ति का सुख ही है उस अध्यात्मतरु की छाया।'

इस समूचे ब्रह्माण्ड में मात्र तीन तत्त्व हैं- ईश्वर, देवशक्तियाँ तथा मरणधर्मा जीव (अमर्त्य तथा मर्त्य प्राणी) दर्शन की भाषा में इन्हीं तीनों को अध्यात्म, अधिदेव तथा अधिभूत कहा जाता है। इन तीनों से जुड़े विचार एवं चिन्तन को ही आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कहा गया है। इन तीनों में देवसृष्टि बीच में है, ईश्वर एवं मनुष्य के गुणों से समन्वित होने के कारण।

मनुष्य 'मर्त्य' है क्योंकि '**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**' परन्तु देव 'अमर्त्य' है। क्योंकि जब तक उनका पुण्य क्षीण नहीं होता, वे मृत्यु-मुक्त रहते हैं। अपनी अमर्त्यता तथा अन्यान्य ईश्वरीय विभूतियों के कारण देवता ईश्वर के अत्यन्त समीप हैं। परन्तु एक अन्य दृष्टि से वे मनुष्यों के भी अत्यन्त समीप हैं। वह दृष्टि है – '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**' अर्थात् तप एवं पुण्य के क्षीण हो जाने पर देवों को भी 'मर्त्य' बन कर मृत्युलोक में आना पड़ता है। उन्हें भी मनुष्यों की तरह जीवन-मरण का

बन्धन स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार, देवों की अमर्त्यता भी कालसापेक्ष ही है और उनकी यह कालसापेक्षता भी पुण्यसापेक्ष है। इसका निर्गलितार्थ यह हुआ कि जितने समय तक देवों का पुण्यसम्भार अक्षुण्ण रहता है, उसी अवधि तक वे देवयोनि में रहते हैं अन्यथा उन्हें भी मरणधर्मा मानव बनना ही पड़ता है। इस व्याख्या से स्पष्ट हो गया कि त्रिकालाबाधित शाश्वत सत्ता केवल ईश्वर की है। वही एक मात्र अखण्ड चैतन्याधिष्ठान है जो अखण्ड चैतन्य के रूप में देव तथा मानव ही नहीं प्रत्युत समस्त देवान्तर तथा मानवान्तर सृष्टियों में व्याप्त है। देवान्तर सृष्टि में विद्याधर, अप्सरस्, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पितर तथा नागादि परिगणित हैं।[१] इसी प्रकार मानवान्तर सृष्टि में मानवेतर समस्त अण्डज, पिण्डज (जरायुज), स्वदेज तथा उद्भिज्ज प्राणी आ जाते हैं। देवों को दिव्योपपादुक कहा गया है।[२]

मूलसत्ता ईश्वर की ही है जिसे 'आत्मा' कहा गया है। चूंकि देवसृष्टि तथा पाञ्चभौतिकी सृष्टि के कोटि-कोटि प्राणियों में भी वही आत्मा व्याप्त है, वही सबका अनुप्राणक है, अतएव उसकी इस प्रस्तर-स्थिति को दर्शाने के ही लिये उसे केवल आत्मा न कह कर परमात्मा कहा गया है। अर्थात् अनुप्राणित के रूप में जो आत्मा है, अनुप्राणक के रूप में वही परमात्मा (The super soul) है। उसी को परब्रह्म तथा परमेश्वर (The summum bonem) भी कहा गया है। परमात्मा तथा आत्मा के मध्य अंशी तथा अंश का सम्बन्ध मान्य है। यह सम्बन्ध दोनों संज्ञाओं में प्रयुक्त धातुओं से ही प्रकट हो जाता है। अत् व्याप्तौ धातु से मनिन् प्रत्यय जोड़ कर **आत्मन्** शब्द निष्पन्न होता है- अतति व्याप्नोतीति आत्मा। ठीक इसी प्रकार बृंह्-विस्तारे धातु से मनिन् प्रत्यय जोड़ कर **ब्रह्मन्** शब्द बनता है- बृंहतीति ब्रह्मन् बृंहेनोऽच्च सूत्र से मनिन् प्रत्यय।[३]

आत्मन् तथा ब्रह्मन् शब्दों का ही पुष्कलत्वेन प्रयोग मिलता है उपनिषदों तथा अन्यान्य दार्शनिक ग्रन्थों में। मर्त्य, अमर्त्य सृष्टियों के साथ ब्रह्म अथवा आत्मा का अन्तस्सम्बन्ध-संस्थापन ही

---

१ विद्याधराप्सरसोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।।- अमर. स्वर्ग.२१

२ दिव्योपपादुका देवा नृगवाद्या जरायुजाः।
स्वदेजाः कृमिदंशाद्याः पक्षिसर्पादयोऽण्डजाः।।
उद्भिदस्तरुगुल्माद्या उद्भिदुद्भिज्जमुद्भिदम्। अमर.तृतीय. श्लोक २१२७

३ अत् सातत्यगमने भ्वादि. सकर्मक सेट् धातुः (परस्मैपदी)
बृहि (बृंह्) वृद्धौ, अकर्मकसेट्धातुः (परस्मै.) - बृहद्धातुरूपा. १८६७ ई

अध्यात्म कहा जाता है। आत्मनि इत्यध्यात्मम्। अर्थात् आत्मा के बारे में विचार या चिन्तन (करना) ही अध्यात्म है। आध्यात्मिक चिन्तन (Spiritual Speculation) का अर्थ ही है किसी भी सत्ता के विषय में, उसके अनुप्राणक तत्त्व (ब्रह्म अथवा आत्मा) की दृष्टि से विचार करना।

अनुप्राणन का सामान्यतः अभिप्राय है– अचेतन को चेतन बना देने वाला, निष्क्रिय को सक्रिय बना देने वाला मूलतत्त्व। काव्य में रस ही गुण, रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति, अलंकार, शब्द एवं अर्थ को अनुप्राणित करता है तो मानवशरीर में आत्मा ही कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार आदि को अनुप्राणित करता है। इसी प्रकार सुवर्ण निर्मित सैकड़ों (कटक, कुण्डलादि) आभूषणों तथा मृत्तिकानिर्मित सैकड़ों पात्रों (शराब,घट, भृङ्गार, मल्लकादि) को क्रमशः सुवर्ण एवं मृदा ही अनुप्राणित करते हैं। इस प्रकार जो तत्त्व जिन पदार्थों का अनुप्राणक है वही उसका परमात्मकल्प है। इस सन्दर्भ को और बोधगम्य बनाने के लिये मैं बृहदारण्यकोपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता का आश्रय लेना चाहूँगा। दोनों सन्दर्भ लौकिक स्तर पर समझने योग्य हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी ब्रह्मवादिनी भार्या मैत्रेयी को ब्रह्मतत्त्व (=आत्मतत्त्व) समझाते हुए कहते हैं– **यदात्मैव सर्वानन्दनिःस्यन्दभूतः। न वा पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति। आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति। न वा पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति। आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च। आत्मनि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवतीति।– बृहदा. २.४.५**

इसी उपनिषद् में ब्रह्म की सर्वमूलकता को दृष्टान्त–मुखेन स्पष्ट करते हुए, यह भी कहा गया है–

स यथा अग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति एवमेवास्मादात्मनः (ब्रह्मणः) सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति। बृहदा. २.१.२०

परन्तु अनुप्राणक होते हुए भी, सर्वमूलक होते हुए भी, वह ब्रह्म स्वयं तो नहीं दीखता, बस उससे अनुप्राणित सृष्टिविस्तार ही दीखता है। जल में घुले लवण के समान वह रहता है अदृश्य, परन्तु अनुभव (नमकीन पानी पीने से) से संवेद्य बन जाता है–

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत न ह अस्य उद्ग्रहणाय इव स्याद्यतो यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वा अरे इदं महद्भूतं अनन्तम् अपारं विज्ञानघन एव। – बृहदा. २.४.१२

केनोपनिषद् तथा माण्डूक्योपनिषद् में भी इसी तथ्य को प्रकारान्तर से समझाया गया है –

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।
यत्प्राणैर्न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

–केन १.१.५–८

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाऽप्रज्ञम् । अदृष्टम–व्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा । स विज्ञेयः । माण्डूक्यो. ७

गीता में परमात्मा, देवसमुदाय तथा मर्त्यसमुदाय की एकसूत्रता को यज्ञ–संस्था के माध्यम से समझाया गया है। नन्द–नन्दन कृष्ण बताते हैं अर्जुन को कि सृष्टि के आदि में प्रजापति ने यज्ञों के साथ प्रजाओं की सृष्टि की तथा समझाया कि यही यज्ञ तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करेगा। इन यज्ञों के माध्यम से मानव देवों को भावित (तृप्त) करेंऔर सन्तृप्त देवगण मनुष्यों को कृपान्वित करें। यज्ञभावित देवगण मनुष्यों को अभीष्ट भोग प्रदान करें। कैसे ? अन्न देकर। अन्न कैसे प्राप्त होगा ? पर्जन्य (वृष्टि) से। पर्जन्य कैसे बनेंगे ? यज्ञ–धूम से। और यज्ञ कौन करेगा ? मानवगण ! इस प्रकार यज्ञ के माध्यम से ही देवमानवसामञ्जस्य की सिद्धि होती है। यज्ञ कर्म का प्रतीक है और कर्म के मूल में है स्वयं ब्रह्म (परमेश्वर)। इस प्रकार, सर्वमूलक ब्रह्म अन्ततः यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है– **तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।**

श्रीमद्भगवद्गीता का पूरा सन्दर्भ इस प्रकार है–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।
इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ ! स जीवति ।।

श्रीमद्. ३.१०.१६

अध्यात्म की इस दीर्घ भूमिका से स्पष्ट हो जाता है कि भारत का प्राचीन समाज कैसा रहा होगा ? आधिभौतिकी सभ्यता के शिखर पर आरूढ़ भारत ने रामायण तथा महाभारत काल में कौन सी समृद्धि नहीं प्राप्त की ? भारत ने समुद्र पर पुल बाँधा। पुष्पक, सौभ तथा कामग जैसे विमान बनाए जो तमोधामदुरासद तथा षड्ऋतूद्भावी थे[१]। ऋग्वेद के मंत्रों में शतारित्रा नौः की चर्चा है।[२]। महर्षि तुग्रु ने अपने पुत्र भुज्यु के लिये त्रिचक्र–व्योमरथ दिया जो पृथ्वी, आकाश एवं जल में समान रूप से चलता था[३]। अश्विनी कुमारों ने समरभूमि में कटी विश्पला की एक जंघा को लोहे से पुनर्निर्मित कर दिया[४]। क्रुद्ध देवराज इन्द्र द्वारा काटे गये महर्षि दधीचि के अश्वशिरस् के स्थान पर, सुरक्षित रखे उनके मूलशीर्ष

१. द्रष्टव्यः श्रीमद्भागवत, स्कन्ध–३.२३.१२ (महर्षि कर्दम का कामग विमान) स्कन्ध–१०.७६.१ (शाल्व का सौभविमान)
२. शतारित्रां नाणम् १– ऋग्वेद १.११६.५
३. ऋग्वेद २.३४.२
४. चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णभाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्। सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।। ऋक् १.११६.१५

को पुनः संयोजित कर दिया[५]। नपुंसक इन्द्र को, बकरे का वृषण प्रत्यारोपित कर पुनः पुंस्त्व प्रदान कर दिया[६]। उपमन्यु को नेत्र, वृद्ध च्यवन को यौवन, अपाला को श्वित्रमुक्ति, घोषा को रोमशत्व-मुक्ति भी नासत्यों ने ही दी[७]। दशरथ के चारों पुत्र पुत्रेष्टि-याग में निर्मित चरु-प्रभाव से ही हुए[८]। महर्षि ऋचीक के मंत्रनिर्मित चरु से ही विश्वामित्र एवं परशुराम का जन्म हुआ[९]। विशल्यकरणी, सन्धानी तथा सवर्णकरणी औषधियों का जो वर्णन अथर्ववेद, चरक एवं सुश्रुत में प्राप्त होता है[१०] उससे सिद्ध होता है कि यह राष्ट्र आयुर्वेद में कितना आगे था ? ये सारे सन्दर्भ कल्पनाजन्य नहीं हैं, श्रद्धा तथा आस्थापूर्वक स्वीकार करने योग्य हैं। आयुर्वेद ही नहीं, स्थापत्य, मूर्तिशास्त्र, चित्रकर्म, संगीतशास्त्र, विमानशास्त्र, ज्योतिश्शास्त्र, खगोल, शालिहोत्र (Horse Science) शकुनिविज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों में भारतवर्ष विश्वातिशायी रहा है।[११]

परन्तु इन सारी भौतिक उन्नतियों की पृष्ठभूमि में भारतीय अध्यात्म दृष्टि ही प्रधान रही है। इस गूढ़ सत्य को सप्रमाण विवेचित करने का यहां अवसर नहीं है, तथापि भारतीय अध्यात्मवाद से सम्पूर्ण विश्व परिचित रहा है। यहां तक कि अपनी अध्यात्मवादी दृष्टि के ही कारण भारत ने यूनानियों तथा फारसी-मुस्लिम इतिहासकारों के स्तर का (बचकाना) इतिहास नहीं लिखा। 'भारतीयों को इतिहास-लेखन का ज्ञान ही नहीं था' - ए.स्टीन के इस आक्षेप का जो करारा उत्तर फ्रेडरिक मैक्समूलर ने दिया था, उसमें इसका उत्तर मिलता है कि भारतीयों ने औरों जैसा इतिहास क्यों नहीं लिखा।[१२]

संस्कृत-वाङ्मय में अध्यात्म का यह प्रवाह ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो गया था। सांमनस्य सूक्त/संज्ञान सूक्त (१०.१९१) अभयसूक्त / प्राणसूक्त (अथर्व. २.१५) नासदीय सूक्त (१०.१२९) में यह अध्यात्मप्रवाह प्राञ्जलरूप में देखने को मिलता है। यजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त (यजु.३४) तथा वाक्सूक्त (ऋक्.१०.१२५) में भी अध्यात्म के विविध पक्षों का दर्शन हमें मिलता है। अथर्ववेद के भी अनेक सन्दर्भों में आध्यात्मिक चेतना का चित्रण विद्यमान है। कुछ तथ्यों का विवेचन यहां अपेक्षित है।

---

५. सविस्तर द्रष्टव्य - ऋग्वेद १.११६.१२
६. वही १.११६.१३, १.११६.१५
७. घोषायै पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्य अश्विनावदत्तम्।।१.११६.६
८. द्रष्टव्यः वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड।
९. द्रष्टव्यः श्रीमद्भागवतम्-९.१५
१०. यथा नकुलो विच्छिद्य सन्दधात्यहिं पुनः। एवा कामरूप विच्छिन्नं सन्धेहि वीर्यवति।।- अथर्व ६.१३९.५
११. प्राचीनभारते खगोलशास्त्रम्। डॉ. एस.वी. वेलंकर। गीर्वाणसुधा १९९५
१२. For Indians the life was merely a drama. That's why India has no history.

अथर्ववेद के प्राणसूक्त में आत्मा की अमरता को ही स्थापित किया है ऋषि ने –

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः।
यथा ऽहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः।

–अथर्व– २.१५.२–५

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।

–अथर्व. २२.४.२–६

नासदीयसूक्त में सृष्टि की मूलसत्ता की गहन समीक्षा की गई है। यह मूलसत्ता ब्रह्म ही है। महाप्रलयवेला में न मृत्यु थी, न ही मृत्यु का अभाव (जीवनतत्त्व) था। रात्रि एवं दिन का ज्ञान भी नहीं था। बस एकमात्र ब्रह्मतत्त्व ही विद्यमान था– प्राणयुक्त, क्रियाशून्य तथा माया से उपहित। उस ब्रह्म के अन्तराल में ही सृष्टि का बीज (कामना) विद्यमान था। उस सृष्टि का उपादान तथा निमित्त क्या था ? इसे तो यथार्थतः देवता भी नहीं जानते, तो फिर मनुष्य की सामर्थ्य कहां ?[1]

पुरुषसूक्त (१०.९०) में, सृष्टि करने को उद्यत परब्रह्म की विराटता का चित्रण बड़े कौशल के साथ दिया है। वह विराट् पुरुष सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष तथा सहस्रपाद है। वह सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त करने के बाद भी, ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो भूतकाल में था, जो वर्तमान में है तथा जो भविष्य में होने को है– वह सब यह विराट् पुरुष ही है–

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्।।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

– पुरुष सूक्त, १०.९०.१–२

---

१. न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अहन् आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्त पर : किं चनास।।
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टः ?
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव।। –ऋक् १०.१२९.१–७

प्रस्तुत सूक्त में उसी विराट्पुरुष से सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, वसन्तादि षड्ऋतु चक्रवाल, रात-दिन, दिक्चक्र तथा अण्डज, पिण्डजादि समूची सृष्टि के उत्पन्न होने की चर्चा की गई है। सगुण ब्रह्म का निरूपण करने वाला यह प्राचीनतम वैदिक प्रमाण है।

वाक्सूक्त (१०.१२५) में अम्भृण ऋषि की कन्या वाक् आम्भृणी 'अहं ब्रह्माऽस्मि' की भावना से ओतप्रोत होकर अपनी अनुभूतियां व्यक्त करती है- मैं एकादश रुद्रों के रूप में विचरण करती हूँ। द्वादश आदित्यों, अष्ट वसुओं तथा विश्वेदेवों के रूप में भी मैं ही विचरण करती हूँ। मैं ही मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनों को धारण करती हूँ। मैं ही त्रिपुरवध के लिये रुद्र बन कर हाथ में धनुष ग्रहण करती हूँ। यह अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा ये सागर- सब मेरे ही स्वरूप विस्तार हैं। आदि।

वस्तुतः वाक्सूक्त अदृश्य ब्रह्म का वाचिक प्रत्यभिज्ञान है। जैसे कोई सर्पाविष्ट रोगी सर्प की वाणी बोलता है, भूताविष्ट होकर प्रेत की वाणी बोलता है, जो भूतार्थ कथन से उक्त होती है इसी प्रकार अम्भृण ऋषि की कन्या ब्रह्मवाणी का प्रकाशन करती है ब्रह्म तादात्म्य की स्थिति में।

सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय में ऐसा कोई अन्य सन्दर्भ नहीं मिलता जहां अदृष्टिगोचर ब्रह्म मर्त्यमुखेन प्रकट हो रहा हो। वाक्सूक्त में अवाङ्मनस गोचर ब्रह्म स्वयं अपने स्वरूप एवं कृत्यों का विवरण दे रहा है। कुछ मंत्र द्रष्टव्य हैं-

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।
अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश।।
अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।। ऋक् १०.१२५

अन्य वैदिक सूक्तों (पुरुषसूक्त, नासदीयसूक्त, शालासूक्त, दुन्दुभिसूक्त, प्राणसूक्त, विश्वेदेवसूक्त आदि) में जहाँ ब्रह्मसत्ता का निरूपण, ऋषियों द्वारा अ-प्रत्यक्ष रीति से किया गया है, वहीं वाक् सूक्त में ब्रह्म स्वयं प्रत्यक्ष है।

वेदमंत्रों में ब्रह्मसत्ता तथा ब्रह्माद्वैत (एकेश्वरवाद) को प्रतिपादित करने वाले और भी प्रकीर्ण स्थल हैं। कहीं एकमेव ब्रह्म की सत्ता देवमाता अदिति के माध्यम से प्रतिपादित है[१], तो कहीं बहुदेवनिष्ठ एकदेववाद से–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

–ऋक्. १.१४४.६

परवर्ती व्याख्याकारों, यास्क, सायण, स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधवादि ने भी यही आस्था व्यक्त की है कि वेद का बहुदेववाद वस्तुतः एक ही देवशक्ति (ब्रह्म) का संस्तवन है। आचार्य यास्क ने तो स्पष्टतः कहा– **महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते। निरुक्त, ७.१**

वेदोत्तर संस्कृत साहित्य वस्तुतः वेदों का व्याख्यान मात्र है। इस तथ्य को स्वयं भगवान् व्यास ने प्रतिपादित किया–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।

कारण के गुण ही कार्य में भी संक्रान्त होते हैं। इस न्याय से वेदों का अध्यात्मवाद उसके कार्यभूत पुराणों तथा इतिहास ग्रन्थों[२] (रामायण एवं महाभारत) में भी संक्रान्त हुआ। यद्यपि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा धर्ममूर्ति पाण्डव बन्धुओं का चरित वर्णन होने के कारण रामायण एवं महाभारत कोरे इतिहास ही नहीं, काव्य भी हैं। अवान्तरकालीन समस्त महाकाव्यों का लक्षण एवं लक्ष्य

---

१. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम् अदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।
–ऋक् १.८९.१०

२. महाभारत के तो इतिहास होने में कोई संशय ही नहीं। परन्तु रामायण को भी काव्य के साथ ही साथ इतिहास भी माना गया है–
पूजयंश्च पठंश्चैवमितिहासं पुरातनम्
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।।
एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रव्याहरत विश्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ।। वा.रा.

(प्रतिपाद्य) इन्हीं दोनों आर्षकाव्यों से अनुगत है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट (११वीं शती ई.) ने तो काव्यादर्श निरूपित करते हुए स्पष्टतः घोषित किया – **रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत्।**

यद्यपि रामायण, महाभारत, अष्टादश महापुराणों तथा (अष्टादश) उपपुराणों में कोई न कोई विशिष्ट नायकचरित वर्णित है। उदा. रामायण में राम–रावण का संघर्ष तथा महाभारत में कौरव–पाण्डव संघर्ष। इस संघर्ष में अन्ततः धर्म, न्याय एवं विश्वशान्ति के लिये युद्ध अनिवार्य हो जाता है। तथापि युद्ध की विभीषिका को टालने के लिये बार–बार अध्यात्मवाद का सहारा लिया जाता है। राम की परब्रह्मता को सर्वप्रथम मारीच समझाता है रावण को। उस परब्रह्मता का उसे प्रत्यक्ष बोध है जब पन्द्रहवर्षीय राम ने उसे शरप्रहार से हजारों मील दूर सागरद्वीप में फेंक दिया था। परन्तु पापात्मा रावण मदान्ध है, नहीं समझता। तदनन्तर मन्दोदरी, हनुमान्, प्रहस्त, अंगद, यहां तक कि महर्षि पुलस्त्य भी सन्देश मुखेन उसे समझाते हैं, राम के परमेश्वरत्व का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु रावण सबका ही उपहास करता है।अन्ततः अपनी मृत्यु से ही वह नामशेष हो जाता है (कीर्ति– शेष नहीं)। ठीक यही स्थिति महाभारत में भी है। हठी दुर्योधन तो अपने जैविक संस्कारों से विवश है। रावण की तरह उसे भी न्याय–अन्याय का, धर्म–अधर्म का, पुण्य–पाप का बोध है। तथापि उसकी सत् के प्रति प्रवृत्ति नहीं है। वह अपनी विवशता को अन्ततः प्रकाशित भी करता है –

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

पुराणकार को जब भी अवसर मिलता है, किसी न किसी पात्र के माध्यम से वह अध्यात्मवाद को प्रतिपादित कर ही देता है। कहीं ब्रह्मा तो कहीं शिव, कहीं देवर्षि नारद तो कहीं सनकादि ऋषिगण, कहीं ध्रुव तो कहीं प्रह्लाद,कहीं ग्राहग्रस्त गजेन्द्र तो कहीं वृक्ष (अर्जुन) योनि से मुक्त कुबेर पुत्र नलकूबर एवं मणिग्रीव– भगवान् के ब्रह्मस्वरूप के प्रकाशन वास्ते दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से, यदि पुराण–प्रतिपादित अध्यात्मवाद का विवेचन किया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही बन जायेगा। अतएव यमलार्जुन स्तुति को ही प्रतीकभूत मान कर उद्धृत किया जा रहा है–

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताऽव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः।।
त्वमेकः सर्वभूतानां देहः स्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः।।
त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्त्वतमोमयी।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्।।

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ।।
तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ।।
यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ।।
स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोऽंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ।।

–श्रीमद्भाग. १०.१०.२६–३५

रामायण के अनेक स्थलों पर राम के महाविष्णुत्व का प्रतिपादन मिलता है। मुनि पत्नी अहल्या द्वारा की गई स्तुति में, शबरी एवं कबन्ध की स्तुति में, सीताहरण के अवसर पर रोषाविष्ट राम को समझाते हुए लक्ष्मण के वचनों में तथा नागपाश बन्धन के क्षणों में विभीषण द्वारा की गई राम की स्तुति में उनके परब्रह्मत्व का ही प्रतिपादन मिलता है। योगवासिष्ठ तो अध्यात्मचिन्तन का आकरग्रंथ ही माना जाता है। इसी प्रकार अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण तथा भुशुण्डिरामायण आदि में भी अध्यात्मवाद का गहन चित्रण है।

संस्कृत का महाकाव्य, खण्डकाव्य, दशरूपक एवं चम्पू–साहित्य भी अतिशय समृद्ध है। यद्यपि ये ग्रंथ कथा की अन्विति में ही पर्यवसित हैं तथापि चरितवर्णन में भास–कालिदासादि की दृष्टि अध्यात्मवादी ही रही है। इस अध्यात्मवाद के अनेक विवर्त हैं। कहीं यह अवश्यम्भवितव्यता के रूप में, कहीं भागधेय के रूप में, कहीं सुख एवं दुःख की अनिवार्यता के रूप में, तो कहीं नियतिवाद के रूप में वर्णित दीखती है। भास कहते हैं– **'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः'** तो शकुन्तला सर्वदमन के प्रश्न (मातः कोऽयम् ?) का उत्तर देती हुई कहती हैं– **'वत्स। स्वभागधेयानि पृच्छ।** कालिदास का कण्वशिष्य कहता है–

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना –
माविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवाऽत्मदशान्तरेषु ।। अभि.शा .४.२

मेघदूत का यक्ष भी, अपने सन्देश में यही ढांढस बंधाता है विरहिणी भार्या को–

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे तत्कल्याणि।
त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।। उत्तरमेघ, ४६

कण्वाश्रम में प्रविष्ट होते ही दुष्यन्त को भवितव्यता का आभास सा होता है –

शून्यमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।। अभि. शा., १.१५

नैषधकार श्रीहर्ष कहते हैं कि जैसे आंधी तिनके को मनचाही दिशा में उडा ले जाती है उसी प्रकार मनुष्य की नियति उसके जीवन की घटनाओं को। राजा नल भी दुष्यन्त के ही समान भवितव्यता में विश्वास करते हैं–

क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः ?

–नैषध. १.१०२

अदृष्ट वैभव के विषय में कवि पुनः कहता है–

अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्
करोति सुस्रिर्जनदर्शनातिथिम्।।नैषध. १.३९

श्रीहर्ष का कहना है कि अवश्यम्भावी घटनाओं के सन्दर्भ में विधाता की आकांक्षा जिस दिशा में जाती है मनुष्य का चित्त भी उसी दिशा में जाता है, ठीक यूं ही जैसे तिनका आंधी की दिशा में ही उडता है–

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा
यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते
जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना।।नैषध. १.१२०

इस सन्दर्भ का कोई अन्त नहीं है। वैदिक, आर्हत तथा सौगत तीनों ही परम्पराओं के महाकाव्यकारों ने अध्यात्मवाद के विविध पक्षों को पुष्ट किया है। खण्डकाव्यों का तो एक विशिष्टरूप ही आधिदैविक तथा आध्यात्मिक कोटि का है। आधिदैविक कोटि के खण्डकाव्य स्तोत्रकाव्य (Devotional Poem) कहे जाते हैं। आनन्दवर्धन प्रणीत देवीशतक, बाणभट्टकृत चण्डीशतक, मयूरभट्टकृत सूर्यशतक, मूककविकृत मूकपञ्चशती, वेदान्तदेशिककृत पादुकासहस्रम्, कुलशेखर-प्रणीत मुकुन्दमाला, बिल्वमंगलकृत कृष्णकर्णामृतम्, पुष्पदन्त प्रणीत शिवमहिम्नस्तोत्र, शंकराचार्य प्रणीत आनन्दलहरी, सौन्दर्यलहरी तथा पण्डितराज जगन्नाथ की लहरियाँ इसका निदर्शन हैं।

इन स्तोत्रकाव्यों में कुछेक ऐसे भी हैं जो अपने उपास्य देवता को परब्रह्म की पदवी पर भी अधिष्ठित करते हैं। शिवमहिम्नः स्तोत्र इसी प्रकार का स्तोत्रकाव्य है जिसमें शिव की परब्रह्मकल्पना है। सौन्दर्यलहरी में भगवती पराम्बा तो त्रिदेवों की भी समवेत शक्ति हैं।

संस्कृत की अर्वाचीन रचनाधर्मिता भी पुराण, आर्षकाव्य, अभिजात संस्कृत कविता का ही अनुवर्तन कर रही है। प्रो. रेवाप्रसाद द्विवेदीकृत 'उत्तरसीताचरितम्' की सीता अध्यात्म के रंग में रंगी है। वह राम द्वारा निर्वासित नहीं होती प्रत्युत स्वयमेव, त्रिलोकवन्द्य पति की लोककीर्ति के लिये, वन को प्रस्थान करती है- और अन्ततः योग का आश्रय लेकर ब्रह्मलीन हो जाती है-

शब्दादिभ्यस्तदनुकरणग्राम आसाद्य मोक्षं
तस्या आत्मन्यमृतजलधौ बिन्दुभावेन मग्नः।
प्राणायामः स्वयमथ तदा प्राणरोधस्वरूपः
प्रादुर्भूतः सहजसुभगो ध्यानदाढ्र्यं दुहानः ।।
स्थिवास्यामेषा स्थितिमलभतोत्थानरहितां
यतो युक्तोयोगी व्युपरतसमाधिच्युतिरभूत्।
अगात्साधारण्यं तदनु तिसृषु व्यक्तिषु परं
नरो नारी क्लीबं क्वनु दधति भेदं रसलये ।।
वशिष्ठो वाल्मीकिर्जनक इतरे चापि मुनय-
स्तदीयां तां दृष्ट्वा स्थितिमधिगतार्थाः कथमपि।
पुनर्भूर्जैस्तस्या व्यधिषत वृतिं किञ्च कतिचित्
प्रतीक्ष्याहोरात्रान् प्रणिजगदुरार्तान् निजजनान् ।।
अलं शोकावेगैरलमतितरां मोहकलुषै-
रलं स्वाधिक्षेपैरथ च पुनरुत्थानयतनैः।
इयं कल्याणी तां गतिमुपगता यां स्पृह्यते

मुनीन्द्राणामात्मा शतशततपोऽनुष्ठितिपरः ।।
सम्प्रत्यस्याः पशुपतितया पाशमुक्तोऽन्तरात्मा
वन्द्योऽस्माकं भवति जहित स्थूलदेहान्ववायम् ।
धन्यो रामः कुशलवसुता यस्य जाया त्रिलोकी–
माङ्गल्यात्मा व्रजति वपुषैवान्धकारात् परस्तात् ।।

–उत्तरसीता. सर्ग १०

प्रो. अभिराजराजेन्द्र–प्रणीत 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में सीतानिर्वासन का प्रसंग नहीं है। अयोध्या की विशाल राजसभा में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ राम के महाविष्णुत्व तथा सीता के महालक्ष्मीत्व का अद्भुत प्रतिपादन करते हैं तथा रजक को स्वमतस्थापनार्थ आमंत्रित करते हैं। प्रसंग द्रष्टव्य है–

परन्तु सोऽहं तपसाऽर्जवैश्च स्वतेजसा चापि शपामि मान्याः ।
यदात्मपुण्याक्षतभूतिभाग्यैः श्रीराघवं सम्प्रति निर्दिशामि ।।
न मानवो दाशरथिः पृथिव्यां स्वयं महाविष्णुरिहाऽवतीर्णः ।
दृष्ट्या यया तत्त्वविमर्शशक्त्या पश्यामि रामं, सुलभा न सा ते ।।
न यत्र गन्तुं क्षमते शरीरं सूक्ष्मं मनस्तत्र न यात्यशङ्कम् ।
मनोऽपि यत्राऽक्षमते प्रयातुं सर्वज्ञ आत्मा सहजं प्रयाति ।
सौक्ष्म्यं हि शक्तेरिदमापनीयं तपोबलेनैव न चाऽन्ययोगैः ।
अतीन्द्रियं योगमुपार्जितं स्वं प्रस्तौम्यहं तत्तपसाऽनुभूतम् ।।
रामस्य देवत्वमपीह लोके न चास्ति साधारणजीववेद्यम् ।
अगस्त्यवाल्मीकि सुतीक्ष्णविश्वामित्रा विजानन्ति सुवेद्मि चाहम् ।।

–जानकी. सर्ग १८, २०–२४

प्रो. मिश्र ने मर्यादापुरुषोत्तम राम के विविध लोकोत्तर कार्यों को उदाहृत कर पूरी सभा से पूछा– क्या अभी भी आपको श्रीराम के देवत्व में कोई आशंका है ? भगवती सीता उन्हीं महाविष्णु की नित्य अर्धाङ्गिनी लक्ष्मी हैं। मैं अपनी तपःपूत दृष्टि से दोनों के उस दिव्य स्वरूप को देख रहा हूँ। यदि इस बूढ़े ब्रह्मर्षि वशिष्ठ में तुम्हारी श्रद्धा है तो तुम भी इस सत्य को स्वीकारो।

ब्रह्मर्षि की वाणी सुनते ही सभा स्तब्ध हो उठती है। रोता–बिलखता रजक, सहसा मञ्च पर आकर उनके चरणों में लीन हो जाता है। कुलगुरु के संकेत पर राम उसे गले लगा कर क्षमा कर देते हैं।

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का 'गीतधीवरम्' काव्य भी आद्यन्त अध्यात्मवाद की पीठिका पर आधारित है। धीवर मुमुक्षुसाधक का प्रतिरूप है जो भवसागर रूपी सागर को पार करना चाहता है अपनी लघु नौका के सहारे। चतुर्दिक् झञ्झावात है, विकराल उद्भ्रान्त सागर के भयावह महाकल्लोल हैं, भ्रमावर्त हैं। परन्तु विश्वास का धनी धीवर निर्भयभाव से अग्रेसर होने को प्रतिश्रुत है–

नौकामिह सारं सारं गन्तास्मि कदाचित्पारम्
उत्तीर्णः स्यामपि मन्ये पारावारमपारम्।।
इमा लहर्यो नैव स्युर्नावर्ता इमे भवेयुः
मनः प्रगुणयाम्यग्रे सङ्कल्पं धारं धारम्।।
सरति समस्तः संसारः प्रोद्वेल्लति पारावारः
पारावारे नौका नौकायां गतिसञ्चारः
नौकामिह सारं सारं गन्तास्मि कदाचित्पारम्।।

–गीत– १८ तमी गीतिः

स्वातंत्र्योत्तर संस्कृतसर्जना का कैन्वस अत्यन्त विशाल है। केवल उनकी नामपरिगणना के ही लिये दो–चार पृष्ठ चाहिये। उनकी कविताओं में अध्यात्मवाद की समीक्षा के लिये तो बीसों पृष्ठ चाहियें। तथापि मैंने स्थालीपुलाकन्यायेन विषय के साथ न्याय करने का यावच्छक्य यत्न किया है। मेरी दृष्टि में, अर्वाचीन संस्कृत कविता के अध्यात्मवादी हस्ताक्षरों में प्रमुख हैं– डॉ. रसिकविहारी जोशी, डॉ. रामकरण शर्मा, डॉ. कृष्णलाल, डॉ. श्रीभाष्यम् विजयसारथि, डॉ. देवदत्त भट्टि, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, आचार्य श्रीनिवास रथ, डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, स्वामी रामभद्राचार्य, डॉ. अमरनाथ पाण्डेय एवं आचार्य शिवजी उपाध्याय आदि।

हाँ, आधिदैविक, सर्जनाकारों की संख्या पर्याप्त है। इनमें वे रचनाकार हैं जो त्रिदेवों, सूर्य–गणपति–नृसिंह, कार्तिकेय स्वजनपदीय देवी–देवताओं, पवित्र नदियों–पर्वतों, देवालयों अथवा धर्माचार्यों (दीक्षागुरुओं) की प्रशस्तियों के लेखक हैं। वस्तुतः यह सर्जना स्तोत्रकाव्य के ही अन्तर्गत आती है।

आध्यात्मिक सर्जना का अर्थ है सृष्टि के मूल में विद्यमान उस अलक्ष्य शक्ति का सन्दर्शन या अनुभव जो उस सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारण है। उदाहरणार्थ–

बुद्बुदोऽहं भङ्गुरोऽहं नश्वरोऽहम्
यादृशोऽहं योऽप्यहं ननु भास्वरोऽहम्।।
सर्वविधतृष्णाविनिर्मुक्तोऽभिराजः

चिदानन्दनिमज्जितोऽशुभजित्वरोऽहम् ।।
पूर्यते भूलोकवासावधिरिदानीम्
गन्तुमात्मकुटीरमेव कृतत्वरोऽहम् ।।

–हविर्धानी पृ. २८

विषयभोग में रमी बुद्धि स्वयं क्षीण हो रही है तथा शाम्भवी रति उसी मात्रा में बढ़ रही है। जीवन के उत्तरार्ध में प्रत्येक साधक आध्यात्मिक उपचय का अनुभव करता है–

मतिर्वैषयी क्षीयते मन्दमन्दम्
रतिश्शाम्भवी वर्धते मन्दमन्दम् ।।
ध्रुवं विद्धि बन्धोऽवसानं निशायाः
दिशा वासवी भासते मन्दमन्दम् ।।
विहाय श्मशाने न मां निस्सरन्ताम्
उरस्स्पन्दतेऽद्यापि मे मन्दमन्दम् ।।
तनुम्मन्दिरीकृत्य वन्दे पराम्बाम्
ज्वलेत्प्राणदीपो यथा मन्दमन्दम् ।।

–हविर्धानी पृ. ३८

यह संसार क्या है ? एक बाजार ही तो। यहां हम–आप सब बिकने के ही लिये आये हैं। हमारा मोल–भाव हो रहा है। हमें वेदपाठी ब्राह्मण खरीदे या चाण्डाल। कोई फर्क नहीं पड़ता। जो (सौदा) जितनी जल्दी बिक जाय, वह उतना ही सौभाग्यशाली है। जो न बिक पाये, अभागा है। जीवन के प्रति कवि की यह दृष्टि विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक है।

विक्रयार्थं समागतो विपणौ
निष्क्रयार्थं समागतो विपणौ ।।
को नु मां क्रेष्यतीह कैर्मूल्यैः ?
वेद्मि नाऽहं प्रदर्शितो विपणौ ।।
ब्राह्मणो वा वृणोतु चाण्डालः
स्यामुभाभ्यां समादृतो विपणौ ।।
स्वाभिमानस्य सङ्कथा व्यर्था
नैष पन्थाः समर्थितो विपणौ ।।

स्वर्णशाकावुभौ क्षणिकौ
आशु विक्रीयते यतो विपणौ ।।
अत्र घटतेऽखिलं झटित्येव
प्राग्विचारो न सम्मतो विपणौ ।।

–हविर्धानी, पृ. ७६

निर्माता ईश्वर कितना निरंकुश तथा बेचारा जीव कितना विवश है ? कवि कहता है–

मृत्तिकाऽहं त्वं कुलालो निर्मिमीषुः
किमपि रूपं देहि तच्छिरसा ग्रहीष्ये ।।
जागराभिर्जीवनं वीतं निकामम्
साम्प्रतं जगदीश ! निर्बोधं शमिष्ये ।।

–शिखरिणी, पृ. ११४

निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः । सचमुच सन्तोष ही जीवनसुख का मूल है। यही आध्यात्मिक दृष्टि है जीवन के प्रति –

भवसागरं तितीर्षुर्ननु पर्णनौकयाऽसौ
विचराम्यहं पदातिः सौख्यं ममैतदेव ।।
अर्बुदपतिस्स जीर्णः कर्कटरुजा यमेन
स्वस्थोऽस्म्यहं दरिद्रः सौख्यं ममैतदेव ।।
श्रुत्वा तदीयनाम द्विष्टा हसन्ति लोकाः ।
प्रणमन्ति मां विनीताः सौख्यं ममैतदेव ।।
वर्णोज्ज्वलोऽपि लोके सविनिन्दितो बकोटः
कृष्णोऽपि कोकिलोऽहं सौख्यं ममैतदेव ।।

–शिखरिणी, पृ. २००

संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त न होना ही श्रेयस्कर है। पद्मपत्रमिवाऽम्भसि ! संसार बन्धन का हेतु है। इसमें रहो, परन्तु निर्लिप्त भाव से। यह भी अध्यात्म का ही एक रूप है। जो व्यक्ति निरीह है वह वन में रहे या उपवन में ? कोई फर्क नहीं पड़ता। जो नित्य परब्रह्म में लीन है उनके लिये जय–पराजय का कैसा भेद ? जो यश के सहारे जीवित है उन्हें 'वर्षों' से क्या लेना–देना ? आदि शंकर तो ३२ वर्ष ही

जिये, जबकि अनेक पापात्मा शतायु होकर मरते हैं।

यशोभिर्जीविते सति किम्महत्त्वं हायनानाम् ?
निरीहस्यास्ति को भेदो वनानामुपवनानाम् ?
रमन्ते सर्वकालं ये परब्रह्मणि निमग्नाः
जयानां का कथा तेषां पुरोऽथ पराजयानाम् ?
मनोगत्यैव सञ्चरितुं यथेच्छं ये समर्थाः
अपेक्षा का नु तेभ्यो वाजिनां स्तम्बेरमाणाम् ?
इमे स्वात्यम्बुदाम्भः पायिनो व्रतिनो विहङ्गाः
न येभ्यो रोचते ततिरपि सरोवरसागराणाम् ।।
श्रुतिं सज्जय सखे ! शृणु सावधानेनैव मनसा
इयं गीतिर्गभीरार्था त्रिवेणीकविवराणाम् ।।

–शालभञ्जिका, पृ. १३६

अपने गजल संग्रहों से, मैंने अध्यात्म के निकष पर प्रणीत कुछ गीतांशों को उद्धृत किया है, जो मुझे अन्यत्र नहीं मिल सके। संस्कृत में गम्भीर, प्रातिभ एवं चिन्तनपरक काव्यसर्जना का अभी भी नैयून्य है।